भारत पारीख

बनाम

सी.बी.आई. और अन्य

(आपराधिक अपील संख्या 1076/2008)

14 जुलाई, 2008

[सर्व श्री अल्तमस कबीर और डॉ. मुकुंदकम शर्मा , न्यायाधिपतिगण]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973:

धाराओं 207, 227 और 482- आरोप विरचित करने के बाद उन्मोचित करने के लिए अभियुक्त की प्रार्थना- आदेशः आरोप विरचित करने के स्तर पर टालमटोल और असंगत जांच अस्वीकार्य है और अभियुक्त के अभिकथनों को जांच एजेन्सी द्वारा प्रस्तुत सामग्री तक ही सीमित रखना होगा- एक बार चार्ज विरचित किये जाने के पश्चात् प्रस्तुत दस्तावेजों को कार्यवाही को वापस खोलने के लिए अथवा उच्च न्यायालय की धारा 482 के अंतर्गत अधिकारिता को लागू करने के लिए निर्भर नहीं किया जा सकता।

प्रस्तुत अपील अभियुक्त के आरोप विरचित होने के पश्चात् उन्मोचन तथा कार्यवाही को पुनः खोलने की प्रार्थना के आवेदन को खारिज किये जाने से उत्पन्न हुई है, न्यायालय के समक्ष विचार के लिए प्रश्न थेः (i) "क्या अभियुक्त पर आरोप विरचित किये जाने के पश्चात् मजिस्ट्रेट के पास इस आधार पर उक्त आदेश को वापस लेने की कानूनन अधिकारिता है कि अभियोजन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के प्रावधानों की पालना करने में असफल रहा है" और (ii) क्या उच्च न्यायालय अपने अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए विरचित किये गये आरोप को रद्द कर अभियुक्त को

संहिता की धारा 207 एवं 238 के प्रावधानों की गैर अनुपालना के कारण बरी कर सकता है।

याचिका खारिज करते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

1.1 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराओं 207 और 227 की भाषा को ध्यान में रखते हुए आरोप विरचित किये जाते समय विचारण न्यायालय अभियुक्त को अभियोजन द्वारा प्रस्तुत सामग्री को आरोप विरचित करने के उददेश्य में अपर्याप्त दर्शाने करने का अवसर प्रदान करते हुए केवल अभियोजन द्वारा प्रस्तुत सामग्री को ही देख सकता है। [पैरा 15] [956-एफ और जी]

उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पढ़ी (2005) 1 एससीसी 568; रतिलाल भांजी मिठानी बनाम महाराष्ट्र राज्य ए. आई. आर. 1979 एससी 94; और आंध्र प्रदेश राज्य बनाक गोलकोंडा लिंग स्वामी और अन्य, ए.आई. आर. 2004 एस.सी. 3967- निर्भर किये गये।

सतीश मेहरा बनाम दिल्ली प्रशासन (1996) 9 एससीसी 766- खारिज कर दिया।

1.2 इसलिए संविधान के अनुच्छेद 21 में उल्लेखित निष्पक्ष एवं त्वरित सुनवाई और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से इन्कारी के संबंध में प्रस्तुत किये गये अभिकथनों के होते हुए भी, जो कि इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होते हैं, मजिस्ट्रेट के समक्ष आरोप विरचित करने के पश्चात उन्मोचित करने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता है। [पैरा 15] [957-ए और बी]

पी. रामचंद्र राव बनाम कर्नाटक राज्य, (2002) 4 एससीसी 578; अब्दुल रहमान अंतुले बनाम आरएस नायम (1992) 1 एस.सी.सी 225; धनंजय कुमार सिंह बनाम राजस्थान राज्य 2006 सीआरएल. एल.जे. 3873- लागू नहीं माने गए।

2.1 दूसरे प्रस्ताव के संबंध में उच्च न्यायालय की अभियुक्त के कहने पर अथवा अभियुक्त की ओर से प्रस्तुत सामग्री को देखने की अधिकारिता के लिए संहिता की धारा 482 की शक्तियों का विरचित आरोप को रद्द करने की अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए यह ध्यान में रखना चाहिए कि आरोप विरचित करने के बाद यदि अभियुक्त आरोपों से दोषी नहीं होने का दावा करता है और/या मुकदमा चलाये जाने का दावा करता है, तो अभियोजन ओर से आरोपों को सिद्ध करने के लिए साक्ष्य को पेश करना होगा। स्टेट आफ हरियाणा बनाम भजन लाल 1992 सप्लीमेंट्री (1) एसीसी 335, में उल्लेखित असाधारण परिस्थितियों में ही आपराधिक कार्यवाहियों को न्याय की सुरक्षा करने के लिए रद्द किया जा सकता है, परंतु ऐसी स्थिति उक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के पश्चात् ही आयेगी। खासकर तब जब आरोप विरचित करने के लिए अभियोजन द्वारा पर्याप्त सामग्री पेश की गई हो। [पैरा 16] [957-बी, सी और डी]

हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल 1992 सप्लीमेंट्री (1) एसीसी 335- पर निर्भर किया गया।

2.2 आरोप विरचित करने के स्तर पर टालमटोल और असंगत जांच की अनुमति नहीं है और इस स्तर पर एक लघु विचारण आयोजित नहीं किया जा सकता है। आरोप विरचित करने के स्तर पर अभियुक्त की ओर से प्रस्तुत अभिकथन केवल जांच एजेन्सी द्वारा प्रस्तुत सामग्री तक ही सीमित होनी चाहिए। अभियुक्त को न्यायालय के आदेश पर अभियोजन द्वारा बाद में प्रस्तुत दस्तावेजों को साबित करने का अवसर मिलेगा, परंतु उक्त दस्तावेजात विरचित किये गये आरोप की कार्यवाही को पुनः खोलने के लिए अथवा उच्च न्यायालय की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अधिकारिता के प्रयोग के लिए उपयोग में नहीं लाए जा सकते हैं। [पैरा 16] [957- ई और एफ]

3. तद्नुसार विद्वान विशेष न्यायाधीश अथवा उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और इसलिए अपील खारिज की जाती है। [पैरा 17] [957-जी]

आपराधिक अपील क्षेत्राधिकारः आपराधिक अपील संख्या 1076/2008

सी.आर.एल. आवेदन 2008 संख्या 2328 में बॉम्बे के उच्च न्यायालय के दिनांक 21.09.2006 के निर्णय/आदेश सेः-

उपस्थिति:-

1. सर्वश्री अमित देसाई, भार्गव वी. देसाई, राहुल गुप्ता, रीमा शर्मा और माइक देसाई, विद्वान अधिवक्तागण, अपीलार्थी की ओर से।

2. सर्वश्री एम. परासन, ए.एस.जी. रंजन नारायण, बी. के. प्रसाद, पी. परमेश्वरन और रवींद्र केशवराव अदसुरे, विद्वान अधिवक्तागण, उत्तरदाताओं की ओर से।

न्यायालय का निर्णय श्री अलतमस कबीर, न्यायाधिपति द्वारा दिया गया-

1. अनुमति दी गई।

2. इस अपील में दो कानूनी प्रस्ताव विचारार्थ आते हैं। पहला प्रस्ताव इस सवाल से संबंधित है कि क्या किसी आरोपी के खिलाफ आरोप विरचित करने के बाद, मजिस्ट्रेट के पास इस आधार पर आरोप विरचना के आदेश को वापस लेने का अधिकार क्षेत्र है कि अभियोजन पक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के प्रावधानों का पालन करने में विफल रहा है। एक सहायक प्रश्न यह भी उठेगा कि क्या ऐसी विफलता से आरोप निर्धारण शून्य हो जाएगा।

3. दूसरा प्रस्ताव यह सवाल उठाता है कि क्या उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए लगाए गए आरोपों को रद्द कर सकता है और

उपरोक्त संहिता की धारा 207 और 238 के प्रावधानों के अनुपालन न करने के कारण आरोपी को बरी कर सकता है।

4. प्रस्तुत अपीलकर्ता विद्वान विशेष न्यायाधीश, मुंबई के समक्ष लंबित एक विशेष मामले में मूल आरोपी नंबर 5 है, जिसमें उसके और अन्य आरोपियों के खिलाफ 13 दिसंबर, 1996 को धारा 120-बी सपठित धारा 420, 468, 471, 477-ए भारतीय दंड संहिता और धारा 13(2) सपठित धारा 13(1)(डी) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत आरोप विरचित किया गया था। हालांकि अपीलकर्ता पर 13 दिसंबर, 1996 को आरोप विरचित किया गया था, परन्तु अपीलकर्ता की ओर से उक्त आरोप निर्धारण के लगभग 5 साल बाद सन 2001 में विशेष न्यायालय मुंबई के समक्ष अभियोजन पक्ष की अभिरक्षा में मौजूद कुछ दस्तावेज पेश करने के निर्देश मांगने के लिए आवेदन दिया गया था। दिनांक 27 अगस्त, 2001 के आदेश द्वारा उक्त आवेदन को स्वीकार किया गया और अभियोजन पक्ष को 24 फरवरी, 1993 को श्री पी.के.आर.के. मेनन के बयान में उल्लेखित सभी दस्तावेजों को पेश करने का निर्देश दिया गया था। उक्त समस्त दस्तावेज अंततः 2002 में पेश किए गए थे। इसके बाद, अपीलकर्ता ने विरचित किए आरोप की कार्यवाही को दुबारा खोलने और उन्मोचित करने के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसे विद्वान विशेष न्यायाधीश ने अपने आदेश दिनांक 1 अप्रैल, 2006 द्वारा खारिज कर दिया।

5. उक्त आवेदन को खारिज करने में, विद्वान विशेष न्यायाधीश ने मुख्य रूप से रतिलाल भानजी मिठानी बनाम महाराष्ट्र राज्य [एआईआर 1979 एससीसी 94] के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया, जिसमें इस न्यायालय ने निर्णीत किया था कि जब एक बार आरोप विरचित हो जाता है, तो धारा 227 अथवा दण्ड प्रक्रिया संहिता के किसी अन्य प्रावधान के तहत, मजिस्ट्रेट के पास ऐसे विरचित आरोप को रद्द कर आरोपी को उन्मोचित करने की कोई अधिकारिता नहीं है। यह भी

उल्लेखित किया गया कि जब एक बार आरोप विरचित हो जाता है और आरोपी खुद को दोषी नहीं होना अभिकथित करता है तो मजिस्ट्रेट को मुकदमें को उसके तार्किक अन्त तक पहुंचाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, एक बार शिकायत या पुलिस रिपोर्ट पर स्थापित वारंट मामले में आरोप विरचित हो जाने पर, मजिस्ट्रेट के पास दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आरोपी को उन्मोचित करने की कोई अधिकारिता नहीं होती है। इसके बाद वह या तो आरोपी को बरी कर सकता है या दोषी ठहरा सकता है।

6. विद्वान विशेष न्यायाधीश ने इस न्यायालय के एक अन्य निर्णय आंध्र प्रदेश राज्य बनाम गोलकुंडा लिंग स्वामी एवं अन्य [एआईआर 2004 एससी 3967] पर भी भरोसा किया, जिसमें समान विचार व्यक्त किए गए हैं।

7. विद्वान विशेष न्यायाधीश के उक्त आदेश से व्यथित होकर अपीलकर्ता ने मुंबई के विद्वान विशेष न्यायाधीश के समक्ष लंबित विशेष मामले की कार्यवाही और आदेश दिनांक 01 अप्रैल, 2006, जिसके तहत विद्वान विशेष न्यायाधीश ने अपीलकर्ता के आरोप से उन्मोचित करने के आवेदन को खारिज कर दिया था; को रद्द करने के लिए बॉम्बे उच्च न्यायालय के समक्ष उपरोक्त संहिता की धारा 482 के तहत एक आवेदन दायर किया।

8. बॉम्बे उच्च न्यायालय ने विद्वान विशेष न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किये गये दृष्टिकोण के समान दृष्टिकोण रखते हुए पुनरीक्षण आवेदन को यह निर्धारित करते हुए खारिज कर दिया कि अभियोजन पक्ष द्वारा कानून की आवश्यकताओं का पर्याप्त अनुपाल किया गया था और आदेश दिनांक 27 अगस्त, 2001 में वर्णित दस्तावेजों को प्रस्तुत करने में रही विफलता आरोप विरचित करने के चरण से कार्यवाही को रद्द नहीं करता है। रतिलाल भानजी मिठानी (ऊपर वर्णित) के मामले में निर्णय के संदर्भ में उच्च न्यायालय द्वारा यह विचार व्यक्त किया गया कि चूंकि आरोप विरचित किया जा

चुका है, इसलिए इस मामले का विचारण होना चाहिए, क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत इस स्तर पर अधिकारिता प्रयोग में लाने के लिए कोई मामला बनना नहीं पाया जाता है।

9. यह अपील, अपीलकर्ता ने विद्वान विशेष न्यायाधीश और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध प्रस्तुत की है।

10. अपीलकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अमित देसाई द्वारा यह तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय द्वारा रतिलाल भानजी मिठानी (ऊपर वर्णित) के मामले में पारित आदेश को गलत तरीके से लागू किया गया था, क्योंकि इसमें अपीलकर्ता का यह मामला था कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के प्रावधानों की अनुपालना नहीं करने से आरोप विरचना के साथ समस्त कार्यवाहियां दूषित हो गई थीं। उन्होंने यह अभिकथित किया कि उक्त प्रावधान की पालना नहीं करना संविधान के अनुच्छेद 21 में उल्लेखित निष्पक्ष और त्वरित सुनवाई की अवधारणा के विपरीत है; जैसा कि सतीश मेहरा बनाम दिल्ली प्रशासन (1996) 9 एससीसी 766 में निर्धारित किया गया था। यह भी तर्क दिया कि इसी आधार पर समस्त कार्यवाहियां भी दूषित हो गई थी। यह निवेदन किया गया कि उच्च न्यायालय ने आरोप विरचना सहित समस्त कार्यवाहियों को रद्द करने के लिए संहिता की धारा 482 के तहत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग नहीं करके गलती की है।

11. अपनी उपरोक्त दलील के समर्थन में श्री देसाई ने पी. रामचन्द्र राव बनाम कर्नाटक राज्य (2002) 4 एससीसी 578 में इस न्यायालय की 7 न्यायाधीशों की पीठ के फैसले का हवाला दिया, जिसमें त्वरित सुनवाई के सवाल पर विचार किया गया और अब्दुल रहमान अंतुले (1992) 1 एससी 225 के मामले में व्यक्त विचारों को ध्यान में रखते हुए यह माना गया कि यदि मुकदमे के विचारण के समापन में देरी, उत्पीड़क या

अनुचित थी तो यह संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होगा और ऐसा विचारण अथवा कार्यवाहियां समाप्त की जा सकेगी।

12. उड़ीसा राज्य बनाम देबेंद्र नाथ पाढ़ी, (2005) 1 एससीसी 568 मामले में तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले का भी संदर्भ दिया गया था, जिसमें इस व्यापक प्रश्न का उत्तर देने के लिए कहा गया था कि क्या आरोप विरचित करने के समय विचारण न्यायालय आरोपी द्वारा दायर की गई सामग्री पर विचार कर सकता है? सतीश मेहरा बनाम दिल्ली प्रशासन के मामले में दो न्यायाधीशों की पीठ के पूर्व के फैसले का संदर्भ भी अस्वीकार्य रूप से दिया गया था। दरअसल इस मामले की सुनवाई रेफरेंस पर की गई, क्योंकि दो समकक्ष अधिकारिता वाली पीठों के विचारों में भिन्नता थी। सतीश मेहरा (ऊपर वर्णित) के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि आरोप विरचित करते समय संहिता की धारा 227 जो अभियुक्त को सुनवाई का अवसर प्रदान करती है, के आलोक में आरोपी की ओर से प्रस्तुत सामग्री पर विचार करने में विचारण न्यायालय सक्षम था, ताकि उसे अनावश्यक रूप से विचारण की पूरी श्रृंख्ला से गुजरना ना पड़े; जिसे आरोप विरचित करते समय ही समाप्त किया जा सकता है, यदि विचारण न्ययालय इससे संतुष्ट हो जाए कि अभियोजन तथा आरोपी दोनों के द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री के आधार पर विचारण को आगे बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है। सतीश मेहरा के मामले में लिया गया यह दृष्टिकोण, यद्यपि, देबेन्द्र नाथ पढी के मामले में खारिज कर दिया गया।

13. अंततः धनंजय कुमार सिंह बनाम राजस्थान राज्य, 2006 सीआरएल. एल.जे. 3873, के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के फैसले का संदर्भ दिया गया, जहां संविधान के अनुचछेद 21 तथा संयुक्त राष्ट्र द्वारा 10 दिसंबर, 1948 को अपनाई गई मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के संदर्भ में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को निष्पक्ष विचारण का अभिन्न अंग माना गया।

14. केन्द्रीय जांच ब्यूरो (यहां से सीबीआई के रूप में संदर्भित) की ओर से पेश होते हुए, अतिरिक्त सालिसिटर जनरल, श्री मोहन परासरन ने अभिकथित किया कि अपीलकर्ता द्वारा दायर किया गया एक समान आवेदन (आपराधिक आवेदन संख्या 1129/1997) 2 नवंबर, 1998 को खारिज कर दिया गया था, क्योंकि किसी भी पक्ष की ओर से सुनवाई के समय प्रतिनिधित्व नहीं किया गया था। उन्होंने यह भी कहा कि देबेंद्र नाथ पढ़ी (उपरोक्त वर्णित) और रतिलाल भानजी मिठानी (उपरोक्त वर्णित) के मामले में निर्णय को ध्यान में रखते हुए, पहले की अस्पष्टता को हटा दिया गया और यह स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया था कि विचारण न्यायालय अपने आरोप विचरित करने के आदेश को वापस नहीं ले सकता है, जिसका परिणाम पुनः कार्यवाही को खोलना होगा, बल्कि आरोप विरचित करते हुए अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत सामग्री पर भी विचार नहीं कर सकता है।

15. इस अपील मे उठाये गये दो प्रस्तावों में से, विचारण न्यायालय की आरोपी के विरुद्ध विरचित किये गये अपने आदेश को वापस लेने की अधिकारिता के संबंध में देबेंद्र नाथ पढ़ी (ऊपर वर्णित) के मामले में पहले प्रस्ताव का पूरी तरह से उत्तर दिया गया है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 और 227 की भाषा को ध्यान में रखते हुए आरोप विरचित करते समय विचारण न्यायालय आरोपी को अभियोजन द्वारा प्रस्तुत सामग्री की अपर्याप्तता को दर्शाने के लिए मौका देते हुए आरोप विरचित करते समय केवल अभियोजन द्वारा प्रस्तुत सामग्री को ही देख सकता है। देबेंद्र नाथ पढ़ी (ऊपर वर्णित) के केस द्वारा सतीश मेहरा (ऊपर वर्णित) के केस में पारित आदेश को खारिज करने के बाद श्री देसाई द्वारा दी गई यह दलील की अभियुक्त के कहने पर अभियोजन से मंगवाये गये दस्तावेजों के आधार पर मजिस्ट्रेट को मामला फिर से खोलना चाहिए था, अब कोई निर्णय का विषय नहीं है। इसलिए संविधान के अनुच्छेद 21 में उल्लेखित निष्पक्ष एवं त्वरित सुनवाई और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से इन्कारी के संबंध में

प्रस्तुत किये गये अभिकथनों के होते हुए भी, जो कि इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होते हैं, विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष आरोप विरचित करने के पश्चात उन्मोचित करने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता है।

16. दूसरे प्रस्ताव के संबंध में उच्च न्यायालय की अभियुक्त के कहने पर अथवा अभियुक्त की ओर से प्रस्तुत सामग्री को देखने की अधिकारिता के लिए संहिता की धारा 482 की शक्तियों का विरचित आरोप को रद्द करने की अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए यह ध्यान में रखना चाहिए कि आरोप विरचित करने के बाद यदि अभियुक्त आरोपों से दोषी नहीं होने का दावा करता है और/या मुकदमा चलाये जाने का दावा करता है, तो अभियोजन की ओर से आरोपों को सिद्ध करने के लिए साक्ष्य को पेश करना होगा। स्टेट आफ हरियाणा बनाम भजन लाल 1992 सप्लीमेंट्री (1) एसीसी 335, में उल्लेखित असाधारण परिस्थितियों में ही आपराधिक कार्यवाहियों को न्याय की सुरक्षा करने के लिए रद्द किया जा सकता है, परंतु ऐसी स्थिति केवल साक्ष्य प्रस्तुत करने के पश्चात् ही आयेगी; खासकर तब जब आरोप विरचित करने के लिए अभियोजन द्वारा पर्याप्त सामग्री पेश की गई हो। जैसाकि देबेंद्र नाथ पढ़ी (ऊपर वर्णित) के मामले में देखा गया है कि आरोप विरचित करने के स्तर पर टालमटोल और असंगत जांच की अनुमति नहीं है और इस स्तर पर एक लघु विचारण आयोजित नहीं किया जा सकता है। आरोप विरचित करने के स्तर पर अभियुक्त की ओर से प्रस्तुत अभिकथन केवल जांच एजेन्सी द्वारा प्रस्तुत सामग्री तक ही सीमित होनी चाहिए। अभियुक्त को न्यायालय के आदेश पर अभियोजन द्वारा बाद में प्रस्तुत दस्तावेजों को साबित करने का अवसर मिलेगा, परंतु उक्त दस्तावेजात विरचित किये गये आरोप की कार्यवाही को पुनः खोलने के लिए अथवा उच्च न्यायालय की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अधिकारिता के प्रयोग के लिए उपयोग में नहीं लाए जा सकते हैं।

17. तद्नुसार, विद्वान विशेष न्यायाधीश अथवा उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और इसलिए अपील खारिज की जाती है।

आर.पी.

अपील खारिज।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी प्रतिभा मोट्यार (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।